अङ्क-२८
जुलाई-दिसम्बर २०१६

वेदविद्या
ISSN-2230-8962

ऋग्वेद में जलविज्ञान एवं वर्षा-यज्ञ

डॉ. भ्रमरलाल जोशी

'ऋग्वेद' एक बृहद् कविता-सङ्ग्रह है। लगभग ४६० ऋषि एवं २९ ऋषिकाओं की कविताओं का यह सङ्ग्रह है। इसमें १०४७२ कविताएँ हैं, जो १०१७ सूक्तों और १० मण्डलों में विभक्त हैं।[१] लगभग इसलिए कि कई ऋषि-ऋषिकाएँ समूहवाची नाम वाले हैं और कई द्विवचनान्त-बहुवचनान्त हैं। जैसे **'ऋषयः सहस्रं वसुरोचिषः अङ्गिरसाः'** (८/३४) **'ऋषयः शतं वैखानसाः' (९/६६) 'ऋषिकाः देवजामयः इन्द्रमातरः' (१०/१५३)** इत्यादि। इनको देखते हुए मेरा अनुमान है कि 'ऋग्वेद' के कवि-कवयित्रियों की सङ्ख्या लगभग दो सहस्र तक पहुँच सकती है।

ऋषि और कवि दोनों ही शब्द एक दूसरे के पर्याय हैं। **ऋषिर्दर्शनात्। कविः क्रान्तदर्शनात्।** यों 'ऋग्वेद' के ऋषि, ऋषि भी हैं और कवि भी हैं।

विद्वानों का मत है कि आज से लगभग ६॥ सहस्र वर्ष पहले से ४॥ सहस्र वर्ष पहले तक २ सहस्र वर्षों में उत्तरी-ध्रुव के आस-पास से भारत में सिन्ध-पञ्जाब तक शताधिक ऋषि-परिवार अपनी यात्रा के साथ-साथ ऋक्-गान भी करते रहे थे। ये अपने सहयात्री वैदिक-समाज के अग्रणी थे, पथद्रष्टा थे। उत्तरीध्रुव की शीत उषाओं में जो ऋषि-ऋषिकाओं का ऋक्-गान प्रारम्भ हुआ था, उसका समापन, उनकी पूर्णाहुति भारत की सिन्ध-पञ्जाब की धरती पर हुई। इस प्रकार 'ऋग्वेद' भारतीय होने के साथ-साथ वैश्विक भी है। तभी जर्मन स्वयं को वैदिक कहकर वेदों पर अपना अधिकार जता रहा है। 'ऋग्वेद' के सम्पादक पं. मैक्समूलर जर्मनवासी ही थे।

'ऋग्वेद' का प्रतिपाद्य है प्रकृति और जीवन। जीवन के निःश्रेयस के लिए ऋषि-ऋषिकाओं ने प्रकृति के गीत गाए हैं। विषय-निरूपण की दृष्टि से इन गीतों में मुख्यतः चार विषय निरूपित हुए हैं। रूपक में कहूँ तो ऋग्वेद-सिंहासन के चार हिरण्यपाद हैं- देवतास्तवन, यज्ञ, शौर्य और शृङ्गार। इस सिंहासन पर विराजमान ब्रह्माण्ड पर एक छत्र राज्य करने वाला राजाधिराज है अग्नि। इन चार हिरण्यपादों में से एक के अभाव में भी सिंहासन लुढक जाएगा। शौर्य है तो शृङ्गार है। शौर्य-शृङ्गार हैं तो देवता-स्तवन और यज्ञ हैं। 'ऋग्वेद' के शृङ्गार को देखकर तो ऐसा कहने को मन होता है कि शृङ्गार संसार का शृङ्गार है तो 'ऋग्वेद' शृङ्गार का भी शृङ्गार है। मुनि वात्स्यायन पुनः अवतरित हों तो मैं उन्हें ऐसा निवेदन करूँगा कि आप 'ऋग्वेद' के शृङ्गार को पढ़कर अपने 'कामसूत्र' में एक अध्याय और जोड़ लीजिए। 'ऋग्वेद' में तो देवता-स्तवन एवं यज्ञ के साथ काम नीर-क्षीरवत् एक हो गया है। यज्ञगृह में

---

[१] 'बालखिल्यम्' ८/४९ से ८/५९ तक के ११ सूक्त और ८० ऋचाओं को छोड़कर।

मूसल से ऊखल में सोम कूटा-पीसा जा रहा है और मूसल के ऊखल में सीधे, आड़े, तिरछे, ऊपर-नीचे के घात-प्रतिघातों को देखकर चारों ओर खड़ा स्त्री-वर्ग काम-शिक्षा ले रहा है (१।२८।३) । ऋषि आजीगर्ति शुनःशेप इन्द्र को सोमपान करने बुला रहा है- 'सगर्भा कबूतरी के पास सङ्गम के लिए कबूतर बार-बार जाता है वैसे ही हे इन्द्र ! तू सोमपान करने के लिए बार-बार मेरे यज्ञगृह में आ (१।३०।४) । यज्ञगृह में मित्रों के बीच बैठा सोमयज्ञ के लिए सोम छान रहा ऋषि-शिशु आङ्गिरस सोम की स्तुति कर रहा है- 'अश्व सुखपूर्वक खींच सके ऐसा रथ चाहता है। मित्रों की टोली हँसी-मजाक की हल्की-फुल्की बातें चाहती है। शिश्न रोमवती योनि चाहता है, मेढक जल चाहता है और इन्द्र के लिए जा रहा यह सोमरस कलश में जाना चाहता है'-

अश्वो वोळ्हा सुखं रथं हसनामुपमन्त्रिणः।
शेपो रोमण्वन्तौ भेदो वारिन्मण्डूक इच्छतीन्द्रायेन्दो परि स्रव॥ (९।११२।४)

अजेय योद्धा युवा ऋषि पायु भारद्वाज युद्ध में प्रस्थान से पूर्व अपने आयुधागार में जाकर आयुधों को धारण करते समय उन्हें स्तुतिपूर्वक अभिमन्त्रित कर रहा है – 'जैसे कोई प्रिया अपने प्रिय से आलिङ्गित होकर कान में कुछ मधुर कहती है, वैसे ही यह प्रत्यञ्चा मुझ योद्धा के निकट आकर कुछ मधुर कह रही है। जैसे सम्भोगकाल में प्रिया सुखकारी शीत्कार करती है, वैसे ही यह प्रत्यञ्चा सुखकारी शब्द कर रही है' (८।७५।३) । ''जैसे अनुकूल पत्नी अपने पति के पास आती है, वैसे ही बाण चढ़ाते समय धनुष की दोनों ओर की कोटियाँ मुझ योद्धा के पास आ रही हैं'' (६।७५।४) । ऋषि परमेष्ठी प्रजापति अपने 'भाववृत्तम्' देवतासूक्त में कहता है- 'मन का रेतस् काम ही अग्र है' **'कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्'** (१०।१२९।४) । यौनमनोविश्लेषक आचार्य सिग्मण्ड फ्रायड कहते हैं- 'काम ही कला एवं विज्ञान का जनक है' । गुजरात का एक मनीषी कहता है- **'माणस पालनाथी चिता सुधि काममय रहे छे।'**

'ऋग्वेद' को लेकर हम यह तथ्य भी जान लें कि 'ऋग्वेद' में यज्ञ की अपेक्षा देवता-स्तवन की ओर ऋषि-ऋषिकाओं का झुकाव अधिक है। यज्ञीय कर्मकाण्ड परवर्ती यजुर्वेद की व्यवस्था है। 'ऋग्वेद' में ऋतुओं में वर्षा का ही एकमात्र स्तवन है। ऋषि-ऋषिकाएँ जानते थे कि वर्षा ही वर्ष भर के संवत्सर-ऋतुचक्र को गतिशील रखती है और यही सृष्टि का प्रमुख आधार है।

'ऋग्वेद' में कहीं भी ऐसा नहीं है कि ऋग्वेदी होता, यजुर्वेदी अध्वर्यु, सामवेदी उद्गाता, अथर्ववेदी ब्रह्मा इत्यादि सोलह ऋत्विज्, यजमान एवं यजमान-पत्नी, ये अठारह मिलकर वर्षा के निमित्त इन्द्रादि देवों को प्रसन्न करने के लिए यज्ञ करने बैठे हों और फलतः वर्षा हुई हो। 'ऋग्वेद' में तो द्यु-अन्तरिक्ष के वर्षाकारी सूर्य-इन्द्रादि देवों की स्तुतियाँ हैं। उन्हें सोम, आज्य एवम् ओषध के हवि से तृप्त किया जा रहा है और उनसे वर्षा की कामना की जा रही है। फिर स्तुतियों से तो देवता क्रीत तक किए जाते हैं। ऋषियों का देवों के साथ साफ लेना-देना है- 'स्तुतियाँ लो और कामना पूर्ण करो। इस हाथ लो और उस हाथ दो'। 'ऋग्वेद' का ऋषि आङ्गिरस कुत्स तो कामनापूर्ण न होने पर अग्नि को आड़े हाथों ले रहा

है- ' हे अग्नि, तेरा ऋत कहाँ चला गया है ? किस देव ने उसका हरण कर लिया है ? मुझे अपनी प्रदत्त आहुतियों का फल क्यों नहीं मिल रहा है ? (१/१०५/४) स्तुतियों से देवता वर्धमान होते हैं और वर्धमान देवता स्तोता की कामना पूर्ण करते हैं। 'ऋग्वेद' का ७वीं शती का, वल्लभीपुर सौराष्ट्र का प्रथम भाष्यकार स्कन्दस्वामी कहता है-

स्तुत्या हि देवता विक्रीयन्ते । देवानां च मनुष्याणां च स्तुत्य-स्तोतृ सम्बन्धः सख्यम् । स्तूयमाना हि देवता वीर्येण वर्द्धन्ते।

ऋषि-ऋषिकाओं की मन्त्र-स्तुतियाँ सकाम हैं। फालतू की गलबाजी नहीं है। जिस वस्तु की कामना होती है, ऋषि उस वस्तु के स्वामी की स्तुति करता है और फिर वस्तु की याचना करता है। यों 'ऋग्वेद' के मन्त्र के दो ही प्रतिपाद्य हुए, एक, देवता की स्तुति । दो, देवता से कामनापूर्ति की याचना- '**यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायां आर्थपत्यम् इच्छन् स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तद्दैवतः स मन्त्रो भवति**' (निरुक्तं ७।१)।

त्र्यम्बकं यजामहे....मामृतात् (७।५९।१२) रुद्र के लिए यज्ञ करता हूँ। वह मुझे अमृत से जुडा रखे। '**तत्सवितुर्वरेण्यम्...धियो यो नः प्रचोदयात्**' (३।६२।१०) हम सविता के भर्ग को धारण करते हैं। वह हमारी बुद्धियों को प्रेरित करे।

ऐसी स्थिति में किसी देवता का क्या साहस कि वह ऋषि के अभीष्ट को पूरा न करे। कई ऋषि तो ऐसे हैं कि देवता तक उनसे भयभीत हैं।

तात्पर्य यह कि वर्षा की स्तुतियों को स्वीकार करके एवं हवि से तृप्त हो करके देवताओं को वर्षा करनी ही है। नहीं तो; स्तुतियाँ एवं हवि बन्द हो जाएँगे और देवता निर्बल हो जाएँगे।

जलविज्ञान-निघण्टु १।१२ में उदक के १०१ पद सङ्गृहीत हैं। 'उन्दी क्लेदने' से उदकम्, जो भिगोता है, वह उदक है। 'ऋग्वेद में जल-विज्ञान' विषय को समझना है तो हमें जहाँ-जहाँ उदकवाची पद प्रयुक्त हुआ है, उसको समझना ही होगा। इस विषय पर तो एक '**महाशोधप्रबन्ध**' लिखा जाना चाहिए।

मैं यहाँ 'ऋग्वेद में जल-विज्ञान' विषय को स्पष्ट करने के लिए आपः, जलम् एवं जलाषम् इन पदों को लेता हूँ।

आपः देवता पर 'ऋग्वेद' में ३० ऋक् हैं । ७॥ ऋक् (१।२३।१६-२३) ऋषि मेधातिथि काण्व, आधी ऋक् (१।१६४।४२ उत्तरार्ध) ऋषि दीर्घतमा औचथ्य, दो सूक्तों (७।४७।४९) की ८ ऋक् ऋषि मैत्रावरुणि वसिष्ठ, ९ ऋक् (१०।९) ऋषि अम्बरीष अथवा ऋषि त्रिशिरा त्वाष्ट्र, ५ ऋक् ऋषि यामामान देवश्रवा (१०।१७, १०।१४, ११-१३)- आपः सोमो वा देवता की।

जलविज्ञान का ज्ञाता ऋषि मेधातिथि काण्व 'जल क्यों जीवन है' ? सृष्टि के इस विज्ञान को पूरे विश्वास के साथ हमारे सामने प्रस्तुत कर रहा है। प्रथम तो ऋषि कविता की भाषा में, रूपक में, कहता है कि- 'जल सृष्टि की माताएँ हैं'- '**अम्बयः**' (१।२३।१६) 'जलों में सभी भेषज हैं, सभी रोगों को मिटाने की ओषधियाँ हैं क्योंकि जलों में अमृत-अग्नि व्याप्त है। जल के द्वारा ही सृष्टिकारी देवता बलशाली होते हैं और वे सृष्टि-कर्म करने में समर्थ होते हैं ;-

अप्स्व१न्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तये। देवा भवत वाजिनः॥ (१।२३।१९)

ऋषि कहता है कि यह जलविज्ञान मुझे राजा सोम द्वारा प्राप्त हुआ है कि सभी कल्याणकारी ओषधियाँ जलों में हैं और जल ही विश्व का कल्याण करने वाले हैं-

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा ।

अग्निं च विश्वशंभुवमापश्च विश्वभेषजीः ॥ (१।२३।२०)

सोम चेतना है। जीवन तत्त्व है। यह दूध में घी की भाँति समस्त सृष्टि में व्याप्त है। ऋषि दीर्घतमा औचथ्य स्तुति कर रहा है – 'लोकनिर्वहण-कर्म में प्रवृत्त दो सुनहरे पक्षी आदित्य और सोम जुड़वाँ हैं, आश्लिष्ट हैं, सखा हैं और एक ही संवत्सर-वृक्ष पर बसेरा ले रहे हैं। इनमें से एक पक्षी आदित्य स्वादु फल खा रहा है तो दूसरा पक्षी सोम फल न खाता हुआ आदित्य पक्षी को चारों ओर से देख रहा है। यह दूसरा पक्षी आदित्य में व्याप्त जीवन तत्त्व सोम है'-

द्वा सपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्यो अभि चाकशीति । (१।१६४।२०)

आचार्य वेङ्कट व्याख्या करते हैं- **'द्वौ सुपतनौ आदित्यश्च सोमश्च सह लोकनिर्वहणे युञ्जानौ सखायौ एकं वृक्षं संवत्सरम् आश्रित्य तिष्ठतः। तयोः एकः तस्य स्वादु फलम् अत्ति। अनश्नन् अन्यः सोमः तम् अभिविपश्यति। सोममतीन्द्र इति।**

गुजराती में कहावत है- **'कूवामां होय तो हवाडामां आवे।'** कूएँ में जल होगा तभी बाहर कुण्डी में आएगा। सूर्य में चेतना है तभी वह सौर-सृष्टि में व्याप्त है। यह वैदिक-विज्ञान है। ऋषि सर्वजीवन्तवाद को मानते हैं। सूर्य में भी जीवन है और वह भी मन-इन्द्रियवान् है (१।१६४।१८)।

अग्नि जीवनदाता है। इसे हम समझें। ऋषि अगस्त्य मैत्रावरुणि की बहन है ऋषिका माता अगस्त्य श्वसा (१०।६०)। यह अपने चार पुत्रों-बन्धु, सुबन्धु, श्रुतबन्धु, विप्रबन्धु- को लेकर युद्धोपकरण की प्राप्ति के लिए द्वार-द्वार गुहार करती भजेरथ-वंश के राजा असमाति के यहाँ पहुँची और उससे दो लाल अश्व युद्ध के लिए प्राप्त किए। उस समय चारों पुत्रों में से एक सुबन्धु निष्प्राण हो गया। तब तीनों युवा ऋषि एवं माता ऋषिका अगस्त्य श्वसा ने अग्नि की स्तुति की। प्रसन्न अग्नि सुबन्धु के शरीर में पुनः प्रविष्ट हुआ और उसमें मन स्थापित किया-

सुबन्धोर्मन आभरम्॥ (१०।६०।१०)

उस समय जीवित सुबन्धु को स्पर्श करते हुए तीनों भाई एवं माता ने कहा- 'हमारा यह हाथ भगवान् है, भगवत्तर है। यह सभी औषधिरूप है और मङ्गलस्पर्श वाला है'-

अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः । अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः॥ (१०।६२।१२)

यों अग्नि अमृत है। अमर्त्य पदार्थ है।

द्वितीयमण्डल का प्रमुख द्रष्टा ऋषि गृत्समद (पूर्व आङ्गिरस शौनहोत्र) पश्चाद् भार्गव शौनक भी ऋषि मैत्रावरुणि के ही स्वर में कहता है कि जल ही भेषज हैं- **'अस्ति भेषजो जलाषः'** (२।३३।७) **जलाषः** इति जल नाम (निघण्टु १२।१००)।

'ऋग्वेद' का सर्वाधिक सूक्त १०२ एवं सर्वाधिक ऋक् ८३५॥ सप्तममण्डल का प्रमुख-द्रष्टा ऋषि मैत्रावरुणि वसिष्ठ कहता है कि रुद्रों के साथ यह जल हमारे लिए कल्याणकारी हो- **'शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः'** (७।३५।६)।

ऋषि मनुवैवस्वत अथवा ऋषि काश्यपमारीच कहता है- 'इस रुद्र ने अपने हाथ में एक सुतीक्ष्ण आयुध धारण कर रखा है और वह है- **'जलाषभेषज' –**

तिग्ममेको बिभर्ति हस्त आयुधं शुचिरुग्रो जलाषभेषजः॥ (८।२९।२)

रुद्र 'जलाषभेषज' है तो उग्र एवं क्रूर भी है। यह रुलाने वाला है अतः रुद्र है। सुनामी की प्रलयङ्कारी लहरें, वात्याचक्र, प्रभञ्जन इत्यादि रुद्र के रौद्ररूप हैं।

ऋषि सिन्धुद्वीप अम्बरीष अथवा ऋषि त्रिशिरा त्वाष्ट्र कहता है- 'माँ जैसे शिशु की वृद्धि के लिए उसे स्तन्य पिलाती है; वैसे ही हे जल ! तू हमें अपना कल्याणकारी अमृतरस प्रदान कर'-

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः॥ (१०।९।२)

यही ऋषि जल को जीवन एवम् अन्न-औषधियों को सींचने वाला कहकर जल की स्तुति करता हुआ मन से उसके पास जाता हुआ कहता है कि- 'हे जल, तू हमें अपना रस प्रदान कर एवं हमें पुत्र-पौत्रादि वंश-वृद्धि में प्रवृत्त कर';-

तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः॥ (१०।९।३)

यही ऋषि जल की पुनः स्तुति करता हुआ कहता है कि- 'हम अपनी अभीष्ट-सिद्धि के लिए देदीप्यमान जल पी रहे हैं। ये जल हमारे लिए कल्याणकारी हों। ये जल होने वाले रोगों को नष्ट करें और जो रोग उत्पन्न होने वाले हैं, उन्हें उत्पन्न न होने दें';-

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शं योरभि स्रवन्तु नः ॥ (१०।९।४)

जलों में कितनी भिषज् हैं। इस भिषग्-विद्या का ज्ञाता ऋषि है अथर्वा का पुत्र ऋषि भिषग् आथर्वण। इसने ओषधयः देवता पर एक सूक्त १०।२७ में अनुष्टुप् छन्द में २३ ऋक् कही हैं।ऋषि भिषग् को १०७ प्रकार की ओषधियों के गुण-धर्मों का ज्ञान है। ऋषि कहता है कि- ' सोम ओषधियों का राजा है। उसे पीले, लाल, पुष्प-फल वाली ओषधियों का ज्ञान है। शरीर को बलशाली बनाने वाली, नीरोग बनाने वाली तीन प्रकार की विशेष ओषधियों का उसे ज्ञान है। 'इष्कृति' ओषधि रोग मिटाती है और 'निष्कृति' ओषधि शरीर के बल की क्षतिपूर्ति करती है । जैसे तस्कर घर में घुसकर सर्वस्व हरकर ले जाता है; वैसे ही ओषधियाँ शरीर में घुसकर सभी रोगों को हर लेती हैं' ;-

अति विश्वाः परिष्ठाः स्तेन इव व्रजमक्रमुः।
ओषधीः प्राचुच्यवुर्यत्किं च तन्वो३ रपः ॥ (१०।९७।१०)

ऋषि ने अपने हाथ पर लेकर रोगी को ओषधि दी है। ऋषि कहता है कि- ' हिंसक जानवर पशुओं के झुण्ड पर आक्रमण करके उसे तितर-बितर कर देता है; वैसे ही ओषधि के रोगी के भीतर जाते ही उसके अङ्ग-अङ्ग से रोग बाहर निकल भागे हैं' ;-

यदि॒मा वा॒जय॑न्न॒हमोष॑धी॒र्हस्त॑ आद॒धे।

आ॒त्मा यक्ष्म॑स्य नश्यति पु॒रा जी॑व॒गृभो॑ यथा ॥ (१०।९७।११)

ओषधि के शरीर के भीतर जाते ही यक्ष्मा-रोग भी ऐसे भागता है, जैसे गोह भागती है ;-

साकं न॑श्य नि॒हाक॑या (१०।९७।१३)

ऋषि भिषग् आथर्वण कहता है कि- 'ओषधियाँ बृहस्पति ने उत्पन्न की हैं- **बृह॒स्पति॑प्रसू॒तास्ता...**१०।९७।१५। बृहस्पति वायु है। वायु का निर्वचन करता हुआ आचार्य स्थौलाष्ठीवि कहता है कि शुद्ध नाम आयु है। **'इण्' गतौ'** से । वायु में 'व' का आगम व्यर्थ ही हो गया है। (निरुक्त १०।१) **'वा गतिगन्धयोः'** से वायु। ऋषि कहता है कि- 'वरुण ने उसे शुद्ध किया है अतः ओषधियाँ शुद्ध स्वरूप में उसके पास आई हैं।' (१०।९७।१६) सोमवती ओषधियाँ द्युलोक से पृथ्वी पर उतरी हैं। ऋषि ने सूक्त में ओषधियों के गुण-धर्म, चिकित्सकधर्म, रोगी के कर्तव्य इत्यादि पर पर्याप्त प्रकाश डाला है।

यज्ञ – यज्ञ सम्मिलित कर्म है। अनेक देव मिलकर सृष्टि-यज्ञ कर रहे हैं। इसी प्रकार पार्थिव यज्ञ भी अनेक ऋत्विज् मिलकर करते हैं। नक्षत्र-मण्डलों के बनने-बिगड़ने की प्रक्रिया को ऋषि दीर्घतमा औचथ्य की आर्षदृष्टि देख रही है- 'गाय के गोबर को जलाने से सफेद धुआँ उठता है **(शकमयं धूम)** वैसा महाधूम का बवण्डर मैं विषुवत् से परे देख रहा हूँ , मानो वीरों ने चितकबरा बैल पकाया हो। ये पहले के धर्म थे'-

श॒क॒मयं धू॒मम॒ारद॑पश्यं विषू॒वतो॒ प॒र ए॒ना व॑रेण।

उ॒क्षाणं॒ पृश्नि॑मपचन्त वी॒रास्तानि॒ धर्मा॑णि प्रथ॒मान्या॑सन् ॥ (१।१६४।४३)

वीर यहाँ देव हैं, पदार्थ हैं। यह शकधूम ब्रह्माण्ड में ज्योतिर्मय वायु के सूक्ष्म तत्त्वों का सघन बवण्डर-सा है। यह भावी नक्षत्रमण्डल की अपरिपक्व-अवस्था है। यह धूम परिपक्व होकर नवीन नक्षत्र-मण्डल के रूप में जगमगा उठेगा।

'शकमयम् धूम' का अर्थ मैंने रुडेल्फ रोथ, ओटो बोथलिंक के संस्कृत-जर्मनकोश (संस्कृत वर्टर बुच), मैकडौनल और मोनियर विलियम्स के संस्कृत-अंग्रेजीकोश से जाना है, अतः ये स्तवनीय हैं। विद्या किसी की बपौती नहीं है। जो इसकी साधना करता है, उसीका यह वरण करती है ;-

जो करसी उणरी हुसी आसी विण नूतीह।

आनह किणरा बापरी भगती रजपूतीह॥ (वीरसतसई, ठाकुर नाथूदान)

भारतीय वैदिककोश, वाचस्पत्यम्, शब्दकल्पद्रुम, शब्दार्थचिन्तामणि, घाटे का संस्कृत-कोश इत्यादि किसीमें भी **'शकमयम् धूम'** का अर्थ नहीं दिया गया है और महावीर, उपस्थ इत्यादि कई पदों के अर्थ भी इन कोशों में नहीं हैं। अतः दुःख के साथ कहना पड़ता है कि पश्चिम के विद्वानों की जितनी

गम्भीरता हम भारतीयों में नहीं है। हम देवता पूर्वाग्रह से भी मुक्त नहीं हैं एवं साम्प्रदायिक हैं। अतः ऋषि-ऋषिकाओं के अनुकूल हम मन्त्रों का अर्थ नहीं कर पाए हैं। सम्भव है, हमारी इसी दुर्बलता को भाँपकर जर्मन का वैदिक विद्वान् रुडेल्फ रोथ कह रहा है- 'एक प्रशिक्षित यूरोपवासी ऋग्वेद के वास्तविक अर्थ तक पहुँचने में किसी ब्राह्मणभाष्यकार से अधिक समर्थ है, क्योंकि उसका (यूरोपीय का) निर्णय देवता-विषयक पूर्वाग्रह से मुक्त होगा। उसे इतिहास-बोध है और उसका बौद्धिक क्षितिज बहुत विस्तृत है; क्योंकि वह वैज्ञानिक वैदुष्य के समस्त उपकरणों से विभूषित है।' A.A. MECDONEL- A HISTORY OF SANSKRIT LITERATURE. P.51. हम अपनी दुर्बलता जानें। हम देवता पूर्वाग्रह से मुक्त नहीं हैं और साम्प्रदायिक सङ्कुचित-दृष्टि से ग्रसित हैं। फिर 'इतिहास-बोध' तो बीसवीं सदी में आविष्कृत विषय है- भाषाशास्त्र का इतिहास, राजनीतिक-इतिहास, सामाजिक-इतिहास इत्यादि। 'ऋग्वेद' के मन्त्रों का अर्थ करने में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है अतः आचार्य रुडेल्फ रोथ के कथन में सत्य अवश्य है। विश्वकवि रवि बाबू कहते हैं- 'भूलों को बाहर जाने से रोकने के लिए द्वार बन्द कर देंगे तो सत्य बाहर ही रह जाएगा।'

बृहस्पति (सूर्य) ने जुहू (रश्मियों) का त्याग किया। फलतः सृष्टि-यज्ञ रुक गया। देव परस्पर कहने लगे- 'यह तो बृहस्पति द्वारा बड़ा किल्विष हो गया।' देवदूत अग्नि जुहू को ढूँढ लाया। सोम जुहू को बृहस्पति को पुनः सौंप रहा है। मित्र-वरुण सोम का अनुसरण कर रहे हैं। जुहू को पाते ही बृहस्पति पत्नीवान् हो गए और पुनः सृष्टि-यज्ञ प्रारम्भ हो गया।

'ऋग्वेद' १०।१०९ का यह बड़ा ही रसात्मक रूपक है। इसकी द्रष्ट्री ऋषिका है जुहू ब्रह्मजाया। यह सात ऋकों का सूक्त है। समासोक्ति द्वारा सूक्त दो अर्थों में चलेगा-सृष्टि-यज्ञ पक्ष एवं पार्थिव-यज्ञ पक्ष। जैसे सृष्टि-यज्ञ एकाकी बृहस्पति से सम्भव नहीं, वैसे ही पार्थिव-यज्ञ भी बिना स्त्री के सम्भव नहीं। इसी कारण संन्यासी वैदिक नहीं है बिना शिखा सूत्र एवं बिना पत्नी-वाला।

ऋषि शंयु बार्हस्पत्य सृष्टि-यज्ञ का विज्ञानसम्मत वर्णन कर रहा है। यह कहता है- 'एक ही बार द्यु, एक ही बार भूमि, एक ही बार वायु एवम् एक ही बार जल उत्पन्न हुआ। सृष्टि इन्हीं से हो रही है। इनके बाद कोई पदार्थ पैदा हुआ ही नहीं क्योंकि आवश्यकता ही नहीं थी'-

सकृद्ध द्यौरजायत सकृद्भूमिरजायत।
पृश्न्या दुग्धं सकृत्पयस्तदन्यो नानु जायते ॥ (६।८।२२)

ऋषि डंके की चोट कहता है कि – '**नानु जायते**' इनके बाद कोई पदार्थ पैदा ही नहीं हुआ। 'ऋग्वेद' में ऐसा सृष्टि-विषयक निश्चयात्मक कथन दूसरा नहीं है। ऋषि नारायण का 'पुरुष' देवता का सृष्टि-विषयक सूक्त है पर यह स्पष्ट नहीं है और प्रो. घाटे एवम् अन्य वैदिक विद्वान् इसे प्रक्षिप्त मानते हैं क्योंकि इसकी भाषा संस्कृत है एवम् इसमें वर्ण-व्यवस्था का वर्णन है।

अदिति कहती है- 'जैसे लुहार धौंकनी से धमता है वैसे ही मैंने असत् को धमा और इससे सत्-रूप आदित्यों का जन्म हुआ। मेरी आज्ञा से आदित्यों ने अन्तरिक्ष समुद्र को मथा और उससे जो ज्योति-कण ऊपर उठे। वे एक नवीन आदित्य मार्त्ताण्ड बन गए। मैंने मार्त्ताण्ड को सृष्टि के लिए द्यु में

छोड़ दिया और मैं अपने सप्त (अनन्त) आदित्यों को लेकर ऊपर ब्रह्माण्ड में चली गई।' यह सूक्त १०।७२ एक ऐसा रूपक है, जिसमें एक पात्र ही रङ्गमञ्च पर आकर बोलता है। सूक्त की द्रष्ट्री ऋषिका अदिति दाक्षायणी है पर इसके विकल्प में ऋषि लोक आङ्गिरस अथवा ऋषि बृहस्पति भी इसके द्रष्टा हैं। सूक्त भावात्मक है।

ऋषि परमेष्ठि प्रजापति का 'भाववृत्तम्' देवता का सूक्त १०।१२९ है। ऋषि कहता है- 'न सत्, न असत्, न अन्तरिक्ष, न मृत्यु, न अमरत्व, न रात, न दिन कुछ भी तो नहीं था। अँधेरे ने अँधेरे को ढँक रखा था। एक एकाकी परम तत्त्व जलाच्छदित हो श्वासोच्छ्वास कर रहा था। तप की महिमा से वह दो भागों में विभक्त हो गया। उसका आधा भाग रेतस् का सिञ्चक पुरुष-तत्त्व हो गया और आधा भाग गर्भ-धारण करने वाला स्त्री-तत्त्व हो गया। यह स्त्री-शक्ति स्वधा थी जो नीचे थी और प्रयत्ति शक्ति पुरुष-शक्ति ऊपर थी। मैं यह जो कह रहा हूँ, वह ठीक है या नहीं, मैं पूरे विश्वास के साथ नहीं कह सकता। जो इसका निर्माता-अध्यक्ष सर्वोपरि स्थान में ऊपर अवस्थित है। वह भी अपने सर्जन के बारे में जानता है या नहीं ?' यों ऋषि परमेष्ठि प्रजापति अपने सर्जन-विषयक कथन को अन्त में अनिश्चयात्मक स्थिति में छोडकर अलग हो रहा है। मानो सृष्टि का सर्जन एक अनबूझ रहस्य ही है।

ऋषि दीर्घतमा औचथ्य तो सृष्टि का एक ही देवता मानता है- अग्नि। इन्द्र, मित्र-वरुण, सूर्य, यम, वायु, इत्यादि इसके ही अङ्ग-प्रत्यङ्ग हैं-

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥ (१।१६४।४६)

यास्क भी यही कह रहा है- **महाभाग्याद् एक आत्मा बहुधा स्तूयते । (निरुक्तम् ७।५)**

देवता अपने महाभाग्य से, अपने अलौकिक सामर्थ्य से एक आत्मा (स्वरूप) होने पर भी ऋषि-ऋषिकाओं द्वारा बहुत आत्माओं (रूपों) में स्तूयमान हो रहा है।

एकस्य आत्मनः अन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति । (निरुक्तम् ७।५)

एक आत्मा के और देव (आत्मा) प्रत्यङ्ग होते हैं अर्थात् जो जिसका अङ्ग होता है, वह उससे भिन्न नहीं होता है।

इतरेतरजन्मानो भवन्ति इतरेतरप्रकृतयः ॥ (निरुक्तम् ७।५)

देवता इतरेतर जन्मा होते हैं। परस्पर से उनका जन्म होता है और इतरेतर प्रकृति होते हैं। आपस में एक का एक कारण हो जाता है। जैसे अग्नि का कारण सूर्य और सूर्य का कारण अग्नि है।

यों मूलदेवता अग्नि है। वही तीनों भुवनों में तीन रूप वाला हो गया है- सूर्य, वायु, अग्नि। 'निघण्टु' के पञ्चम अध्याय में पृथ्वीस्थानी ५२, अन्तरिक्षस्थानी ६८ तथा द्युस्थानी ३१ देवताओं का, यों कुल १५२ देवताओं का उल्लेख है। 'ऋग्वेद' के ऋषि-ऋषिकाओं ने 'ऋग्वेद' में ५३६ देवताओं की स्तुति की है।

वर्षायज्ञ- वर्षायज्ञ भी अन्य यज्ञों की भाँति प्राकृतिक देवों का सम्मिलित कर्म है। मेरी यह स्पष्ट मान्यता है कि द्यु-अन्तरिक्ष की ९९ तथा पृथ्वीस्थानी अग्नि, पृथ्वी, वनस्पति इत्यादि देवताओं का सम्मिलित कर्म ही वर्षा-यज्ञ है। किसी न किसी रूप में इन देवताओं में से प्रत्येक वर्षा-यज्ञ में निमित्त बनता ही है। सूर्य, सूर्य-रश्मियाँ, वायु, पृथ्वी, अग्नि ये तो वर्षा-यज्ञ के मुख्य ऋत्विज् हैं ही। अपनी रश्मियों से सूर्य का पृथ्वी से रस-रूप हवि खींचना, अपनी सोम-हवि को उसमें व्याप्त करना, उदक के सघन-रूप मेघों का बनाना, मेघों में विद्युत्-अग्नि की सूर्य द्वारा व्याप्ति, मेघों के वाहक वायु द्वारा पृथ्वी को ठण्डक देकर मेघों को बरसाना। यह है वर्षा-यज्ञ। पर 'ऋग्वेद' के ऋषि-ऋषिकाएँ कवि-कवयित्रियाँ हैं। वे अपनी बात को रस, अलङ्कार, ध्वनि, व्यञ्जना-लक्षणा एवं प्रतीकों द्वारा अप्रस्तुत-शैली में, वक्रोक्ति में व्यक्त कर रहे हैं। मेघ जल-तस्कर हैं। वे पणि हैं, असुर हैं, वृत्र हैं। उन्होंने देवों की गायें चुरा ली हैं। वर्षा की धाराएँ गायें हैं। गायों के अभाव में सृष्टि-यज्ञ रुक गया है। ऋषि-ऋषिकाओं की कल्पना में एक देव अवतरित होता है इन्द्र। यह इन्द्र ही वृत्र असुरों से देवों की गायें मुक्त कराएगा। वज्रबाहु इन्द्र मरुतों की सेना के साथ गौ-तस्कर वृत्रों, पणियों पर आक्रमण कर देता है। अन्तरिक्ष समराङ्गण बनता है। वृत्र भी सबल हैं। उनके पास भी अपनी सशस्त्र सेना है। इन्द्र देखते ही देखते वृत्रों को, मेघों को, पणियों को अपने वज्र से फाड़कर धरती पर सुला देता है। धरती गायों को पाकर निहाल हो जाती है। देवताओं का सृष्टि-यज्ञ तथा ऋषि-ऋषिकाओं के पार्थिव-यज्ञ पुनः प्रारम्भ हो जाते हैं। यों दोनों यज्ञों के लिए वर्षा-यज्ञ अनिवार्य है। ऋषि वीर हैं, योद्धा हैं। ऋषिकाएँ वीराङ्गनाएँ हैं, योद्धी हैं। इन्होंने अपने अनुकूल इन्द्र-वृत्र युद्धकाव्य की रचनाएँ कर डाली हैं। क्लीब-प्रजा, स्त्रैण-प्रजा अपने स्वभाव के अनुकूल कवि-कवियित्रियों को जन्म देती है और वीर-प्रजा वीर-कवियों की वीर कविताओं की जन्मदात्री होती है। यहाँ दुःख के साथ कहना पडता है कि शब्दकोशों में योद्धा शब्द तो है पर योद्धी शब्द क्यों नहीं है ? 'ऋग्वेद' में तो योद्धी शब्द है (८/८८/४)। ऋग्वेदकाल के बाद स्त्रियों के हाथों से शस्त्र छीनकर पुरुषवर्ग ने इन्हें चूडियाँ पहना दी हैं और इन्हें शयन-कक्ष का शृङ्गार बना दिया है। 'ऋग्वेद' में इन्द्र पर सर्वाधिक सूक्त २५० हैं। इनमें से अधिकांश सूक्त इन्द्र-वृत्र-युद्ध से ही सम्बद्ध हैं। वीरकर्मा इन्द्र के वीरोचित कर्म मुर्दों में भी जान डाल देते हैं। मैंने ऊपर कहा है कि 'ऋग्वेद' में दो वृत्तियाँ मुख्यतः निरूपित हुई हैं - शौर्य एवं शृङ्गार।

'ऋग्वेद' में इन्द्र-वृत्र-युद्ध से सम्बद्ध एक सूक्त है - १०/१०८। यह संवाद-सूक्त है - 'सरमापणि-संवाद'; सरमा इन्द्र की, देवों की कुतिया है। तस्कर पणियों ने देवों की गायें चुरा ली हैं। देवराज इन्द्र अपनी दूती सरमा को गायों का पता लगाने के लिए पणियों के पास भेजता है। सरमा पणियों के पास जागर उन्हें कठोर भाषा में इन्द्रादि देव, दशग्वा, नवग्वा, अङ्गिरस ऋषि तथा ऋषि अयास्य आदि ऋषियों की प्रचण्डता का अहसास कराती है और कहती है कि - 'हे पणियों ! गायों को यहीं छोड़कर तुम भाग जाओ, नहीं तो बेमौत मारे जाओगे' - **गोकामा मे अच्छदयन् यदायमपात इत पणयो वरीयः॥** (१०/१०८/८)

पणि इन्द्रादि देवों से भी अधिक ऋषियों से भयभीत रहते थे। ऋषियों का नाम सुनते ही उन्हें ठण्डा पसीना छूट गया। सरमा और कोई नहीं सरस्वती थी, वाक् थी। संवाद में दोनों पक्ष साम, दाम, दण्ड, भेद नीतियों का प्रयोग करते हैं। पणि सरमा को अपने पक्ष में मिलाने के हेतु से कहते हैं - 'हे सरमा, तू हमारी बहन बन जा। तुझे गायों में हिस्सा देंगे। तुम्हारे देव कठोर हैं। जो तुझ जैसी कोमल रमणी को इतनी दूर हमारे पास भेजा है।' यह सुनकर सरमा पणियों की अपशब्दों में कठोर भर्त्सना करती है।

ऋषि दीर्घतमा औचथ्य कहता है कि देवों द्वारा यज्ञ से यज्ञ हो रहा है। यज्ञ के प्रथम धर्म ही आज भी यथावत् अनुष्ठित हो रहे हैं। साथ ही प्रकृति में ये धर्म पूर्ववत् घटित हो रहे हैं -

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥ (१/१६४/५०)

ऋषि कतवैश्वामित्र वर्षा-यज्ञ का वर्णन कर रहा है - 'हे अग्नि ! सबसे पहले तू ऋत्विज् बना था और पृथ्वी बनी थी यजमान। इस यज्ञ से अन्तरिक्ष में उदक का निर्माण हुआ और सूर्य में सोम पुष्ट हुआ। इसके पश्चात् हे अग्नि ! तूने दुबारा यज्ञ किया। इसमें भी तू ऋत्विज् बना था और सूर्य और वायु यजमान बने थे। इससे अन्तरिक्ष के उदक में सोम का मिश्रण हुआ तथा पृथ्वी पर उदक की वर्षा हुई। यों इस प्रकार के तेरे यज्ञ से पृथ्वी सृष्टिवती हुई। हे अग्नि ! तू अपने इस वर्षा-यज्ञ को सदा वर्धमान एवं गतिशील रखना' -

समिध्यमानः प्रथमानुधर्मा समक्तुभिरज्यते विश्ववारः।
शोचिष्केशो घृतनिर्णिक्पावकः। सुयज्ञो अग्निर्यजथाय देवान् ॥ (ऋग्वेद ३/१७/१)
यथायजो होत्रमग्ने पृथिव्या यथा दिवो जातवेदश्चिकित्वान्।
एवानेन हविषा यक्षि देवान्मनुष्वद्यज्ञं प्र तिरेममद्य ॥ (ऋग्वेद ३/१७/२)

ऋषि कतवैश्वामित्र के दो सूक्त हैं - (३/१७-१८)। दोनों ही सृष्टि-यज्ञ के हैं। ऋषि कहता है कि अग्नि के तीन आहार हैं - सोम, आज्य और ओषधि। ये तीनों ही क्रमशः सूर्य, अन्तरिक्ष और पृथ्वी में उत्पन्न होते हैं -

त्रीण्यायूंषि तव जातवेदास्तिस्र आजानीरुषसस्ते अग्ने ॥ (३/१७/३)

ऋषि गौरिवीतिशाक्त्य ने इन्द्र को लेकर विचित्र कल्पना की है। इन्द्र ने तीन सौ महिषों का मांस खाया और वह सोम भरे तीन सरोवर पी गया (५/२९/८)। यहाँ महिष मेघ हैं और तीन सरोवर तीनों भुवन हैं।

ऋषियों के मन्त्र भी इन्द्र को बलशाली बनाते हैं। जिसके फलस्वरूप वृत्र का इन्द्र वध कर पाता है। ऋषि अवस्यु-आत्रेय कहता है - 'हे इन्द्र ! हमारी मन्त्र-स्तुतियाँ ही तुझे वृत्र को मारने के लिए समर्थ बनाती हैं।' (५/३१/१०)।

ऋषि कुत्स वैदिककालीन एक योद्धा ऋषि था। ऋषियों ने इन्द्र-वृत्रयुद्ध में सहायक योद्धा के रूप में कुत्स का भी वर्णन किया है - 'हे इन्द्र ! तुम और कुत्स आक्रामक असुर शुष्ण से युद्ध करने गए थे। तुम दोनों ने मिलकर शुष्ण का वध किया था और फिर तुमने कुत्स को उसके घर पहुँचाया था।'(५/३१/८)

ऋषि गृत्समद्-भार्गव-शौनक (पूर्वम् आङ्गिरस शौनहोत्र) कहता है - 'असुर कृष्ण ने अपनी पत्नियों में वीर्याधान करके जब उन्हें गर्भवती किया तब इन्द्र ने अपने वज्र से उनके गर्भ को नष्ट कर दिया।' (२/२०/७)। बात एक ही है कि इन्द्र ने मेघों को फाड़कर जल बरसाया। पर कवि उसे कविता की रूपक की शैली में प्रस्तुत कर रहा है। इसीको कविता में विज्ञान कहते हैं - SCIENCE IN POETRY. सम्पूर्ण 'ऋग्वेद' लगभग इसी शैली में है।

कवि विश्वामित्र-गाथिन की कल्पना देखिए - 'इन्द्र ने वृत्र को फाड़कर उसे धरती पर बरसा दिया है। अब इन्द्र पृथ्वी की कटि को अपनी बाहुओं में झकड़कर बैठा है। उसे अपने घर अन्तरिक्ष का ध्यान ही नहीं है।' (३/३२/१२)। यहाँ इन्द्र में परकीय नायक एवं पृथ्वी में परकीया नायिका की भावना व्यक्त हुई है। क्योंकि इन्द्र के घर उसकी पत्नी इन्द्राणी उसकी प्रतीक्षा कर रही है। ऋषि विश्वामित्र गाथिन की अन्य एक कल्पना देखिए - 'अन्तरिक्ष के अगाध समुद्र में निवास करती सूर्य-रश्मियाँ उदक का दोहन कर रही हैं और वे पर्वत (मेघ) की गुफा में रहते अग्नि (विद्युत्-अग्नि) का सेवन कर रही हैं।'(३/५/३)।

ऋषि श्यावाश्व आत्रेय - 'ऋग्वेद' का प्रमुख मरुत्-स्तोता कवि है। मरुतों की कृपा से ही इसे ऋषित्व प्राप्त हुआ था। इसने इन्द्र की अपेक्षा मरुतों को अधिक महत्त्व दिया है। मरुत् जब मेघों पर आक्रमण करते हैं तब इन्द्र उनके पीछे-पीछे चलने वाला एक सहायक योद्धा है। (५/५७/३)

अश्विनौ का एक नाम है - शुभस्पति अर्थात् जलों के स्वामी। शुभम् जल का नाम है - निघण्टु (१/१२/४७) । अश्विनौ भी जल-वर्षक देव हैं। ऋषि पौर आत्रेय अश्विनौ की स्तुति कर रहा है - 'हे अश्विनौ ! तुमने अपने रथ के एक पहिये को सृष्टिकर्ता उदक को उत्पन्न करने में नियुक्त किया है तो दूसरे पहिये को दिन-रात के निर्माण के लिए जगत् के चारों ओर घुमाया है।' (५/७३/३) । 'हे अश्विनौ ! शूर जैसे जङ्गल में सिंह को प्रताड़ित करता है वैसे ही तुम मुझ पौर आत्रेय के लिए मेघों को प्रताड़ित करो।'(५/७४/४) ।

अश्विनौ की स्तुति में ऋषि बार्हस्पत्य भरद्वाज कहता है - 'अश्विनौ जल बरसाकर मरुस्थल को तृप्त करने वाले हैं और मेघों के द्वार को खोलनेवाले हैं।' (६/६२/५)

मित्रावरुणौ भी उदकवान् हैं। ये भी अन्तरिक्ष में उदक की नदियाँ बहाते हैं (५/६२/४) । दोनों ही वर्षा द्वारा सृष्टि को सींचते हैं '**वृषभा**' (५/६३-६४) और दोनों ने मेघों की माया को नष्ट करके उन्हें बरसाया है। (५/६७-६८)

ऋषि अर्चनाना आत्रेय ने दो सूक्तों (५/६३-६४) में उदकवर्षक मित्र-वरुण की भव्य स्तुति की है।

ऋषि उरुचक्री आत्रेय मित्रा-वरुण की स्तुति करता हुआ कहता है - 'हे मित्र-वरुण ! तुम्हारी धेनुएँ अन्नवती हैं। तुम्हारी अन्तरिक्ष की नदियों में मधुर उदक बह रहा है और तुम्हारे द्वारा ही तीनों वृषभों-सूर्य, वायु, अग्नि ने तीनों भुवनों को धारण कर रखा है'-

इरावतीर्वरुण धेनवो वां मधुमद्वां सिन्धवो मित्र दुहे।

त्रयस्तस्थुर्वृषभासस्तिसृणां धिषणानां रेतोधा विद्युमन्तः ॥ (५/६९/२)

ऋषि यजत आत्रेय ने भी उदक-निर्माता के रूप में मित्रा-वरुणों की भव्य स्तुति की है (५/६७-६८)।

ऋषि दीर्घतमा औचथ्य आदित्य की स्तुति करता हुआ करता है कि - 'आदित्य ने अपनी सात रश्मियों के गर्भ में उदक को धारण कर रखा है'-

सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि ॥ १/१६४/३६ ॥

अग्नि और वैश्वानर अग्नि दोनों ही जल बरसाते हैं। षष्ठमण्डल के प्रमुख द्रष्टा ऋषि बार्हस्पत्य भरद्वाज ने दोनों अग्नियों की मेघवर्षक के रूप में मनोहर स्तुति की है -

(१) 'जैसे गायों के लिए युद्ध करते समय योद्धा के आयुध चमकते हैं वैसे ही जल बरसाते समय अग्नि के विद्युत्-आयुध बार-बार चमकते हैं।' (६/६/५)। इस कथन में तत्कालीन सामाजिक स्थिति का भी निदर्शन हो रहा है कि उस काल में गायों, पशुओं के लिए भी प्रायः युद्ध हुआ करते थे। गुजराती में कहावत है - 'जर, जमीनने जोरु, त्रणे कजियाना छोरु' धन, जमीन और स्त्री ये तीनों ही लड़ाई के कारण हैं। रामायण और महाभारत इन दो भारतीय महाप्रबन्ध-काव्यों के मूल में स्त्री ही है। वैदिक-काल में पशु, गाय, अश्व इत्यादि प्रमुख धन थे। इनके लिए प्रायः युद्ध हुआ ही करते थे।

(२) हे अग्नि ! असुर वृत्र का वध करने के लिए दध्यङ् ने तुझे अपनी यज्ञवेदि में समिन्धित किया था (६/१६/१४)। यों ऋषि वर्षा के निमित्त भी यज्ञ करते थे। दध्यङ् ऋग्वेदकालीन कोई दिव्य योद्धा था, दिव्य पुरुष था। तभी ऋषि बार्हस्पत्य भरद्वाज ऋक् में उसका उल्लेख कर रहा है। (वैदिक इण्डेक्स, मैकडौनल एवं कीथ, प्रथम भाग-पृ. २७८।)

(३) अग्नि अन्न का पुत्र है। यह सृष्टि के माता-पिता द्यावा-पृथ्वी, अन्तरिक्ष और यज्ञवेदि के गर्भ में बैठा है और यही उदक की वर्षा करता है (६/१६/३६)।

वैश्वानर अग्नि ने ऊपर द्यु और नीचे पृथ्वी को उत्पन्न किया है। इसीने सृष्टि के बीज सोमवान् उदक को धारण कर रखा है। (६/८/३)।

(५) वैश्वानर अग्नि सृष्टि-वस्त्र के लम्बे तन्तु को और तन्तुमय सर्जन को जानता है। यह आदित्य है। इसकी रश्मियाँ ही सृष्टि-वस्त्र के तन्तु हैं। यही अन्तरिक्ष में पर्जन्य बनकर ऋतु आने पर वाक्य बोलता है अर्थात् गर्जनाएँ करके बरसता है (६/९/३)।

पूषा सूर्य है। यह भी इन्द्र के साथ वृत्र का वध करके मेघों को बरसाने में सहायक होता है। ऋषि बार्हस्पत्य भरद्वाज स्तुतिपूर्वक कहता है - 'जब इन्द्र मेघ को बरसाने के लिए उस पर आक्रमण करता है तब पूषा उसका सहायक होता है।' पूषा प्रातःकाल का सूर्य है (६/५७/१)।

ऋषि बार्हस्पत्य भरद्वाज बड़ा ही कल्पनाशील कवि है। यह सविता की स्तुति करता हुआ कहता है - 'सविता सृष्टि-यज्ञ में हाथ उदक से धोता है' (६/७१/१)। यह प्रातःकालीन अनुदित सूर्य की स्तुति है।

ऋषि बार्हस्पत्य भरद्वाज ने उदक की वृद्धि करने वाली के रूप में द्यावा-पृथिवी की स्तुति की है - 'यह द्यावा-पृथिवी उदक से आवृत है। उदक ही इसकी श्री है - **घृतश्रिया**। उदक से ही यह सम्पृक्त है - **घृतपृचा**। उदक की ही यह वृद्धि करने वाली है - **घृतवृधा**। ऐसी द्यावा-पृथिवी से विप्र सुख की कामना करते हैं -

घृतेन द्यावापृथिवी अभीवृते घृतश्रिया घृतपृचा घृतावृधा।
उर्वी पृथ्वी होतृवूर्ये पुरोहिते ते इद्विप्रा ईळते सुम्नमिष्टये ॥ (६/७०/४)

वर्षाकारी देवताओं में सरस्वती देवता का भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है। ऋषि-ऋषिकाओं ने गौरीवाक्, रुद्रपत्नी, विद्युत्-अग्नि, विद्युत, वाक्, सरमा, वाणी, गौरी, धेनु, श्लोक, गल्दा, गान्धर्वी, सुपर्णा, सहस्राक्षरा, स्वाहा, भारती, घृतस्य-धारा (जल-धारा) इत्यादि अनेक नामों से सरस्वती की स्तुति की है। 'निघण्टु' में वाक् के ५७ नाम हैं। इन नामों के आधार पर उत्तम शोधप्रबन्ध लिखा जा सकता है - **'ऋग्वेद में वाक्'**। वाक् के नामों में ऋषि-ऋषिकाओं को सरस्वती नाम सर्वाधिक प्रिय है। 'ऋग्वेद' में सरस्वती पर ३२ ऋक् हैं जो छः ऋषियों ने कही हैं। सर्वाधिक ऋक् १४ और एक सूक्त (६/६१) ऋषि बार्हस्पत्य भरद्वाज ने कहा है। ऋषि मधुच्छन्दा वैश्वामित्र ने ३ ऋक् (१/३/१०-१२), ऋषि दीर्घतमा औचथ्य ने १ ऋक् (१/१६४/४९), ऋषि गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक ने ३॥ ऋक् (२/३०/८।, २/४१/१६-१८), ऋषि मैत्रावरुणि वसिष्ठ ने ८ ऋक् (७/९५/१, २, ४-६, ७/९६/१-३) तथा ऋषि देवश्रवा यामायन ने ३ ऋक् (१०/१७/७-९) सरस्वती पर कही हैं।

ऋषि मधुच्छन्दा वैश्वामित्र सरस्वती की स्तुति करता हुआ कहता है - 'अन्नों से अन्नवती, अपनी प्रज्ञा में सभी को बसाने वाली, मेघों में चमकती-कड़कती रसवती सरस्वती हमारे यज्ञ की कामना करे'-

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती। यज्ञं वष्टु धियावसुः॥ (१/३/१०)

यही ऋषि सरस्वती को महा उदकों को प्रवाहित करने वाली कह रहा है -

महो अर्णः सरस्वती.....॥ (१/३/१२)

ऋषि बार्हस्पत्य भरद्वाज ने सरस्वती पर सर्वाधिक ऋक् कही हैं। यह यथार्थवादी ऋषि है। यह सरस्वती से प्रार्थना कर रहा है कि - 'हे सरस्वती ! तू हमें धनों की ओर ले जा। अधिक जल बरसाकर तू हमें कष्ट न दे और न कम जल बरसाकर तू हमें कष्ट दे। तू सखी बनकर मेरे घर में मेरे साथ रह और मेरा सेवन कर' -

सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यो माप स्फरीः पयसा मा न आ धक् ।
जुषस्व नः सख्या वेश्या च मा त्वत्क्षेत्राण्यरणानि गन्म ॥ (६/६१/१४)

मेघ कञ्जूस पणि हैं। ऋषि बार्हस्पत्य भरद्वाज सरस्वती की स्तुति में कहता है कि - 'हे सरस्वती ! तू ने बहुत खाने वाले कञ्जूस पणि मेघ का वध करके उसे बरसाया है' (६/६१/१)।

मेघ श्याम होते हैं अतः उन्हें महिष कहा गया है। ऐसे महिषों का वध करने वाली महिषासुरमर्दिनी सरस्वती की ऋषि बार्हस्पत्य भरद्वाज स्तुति कर रहा है (६/६१/७)। इस पर से ही शक्ति के उपासकों ने महिषासुरमर्दिनी महालक्ष्मी की कल्पना की है।

ऋषि बार्हस्पत्य भरद्वाज उदकवती सरस्वती को रुद्र की पत्नी कह रहा है और स्तुति में उसे देवों की स्त्रियों के साथ अठखेलियाँ करने वाली कह रहा है। ऐसी सरस्वती से ऋषि सुखदायी घर की याचना कर रहा है (६/५०/५)।

ऋषि वामदेव गौतम ने बरसती जलधाराओं - **'घृतस्य धाराः'** को नायिका तथा विद्युत् अग्नि को नायक के रूप में चित्रित किया है - 'जैसे कोई स्मितमुखी मनोरमा कान्ता अपने प्रिय में आसक्त रहती है वैसे ही ये बरसती जलधाराएँ अपने प्रिय विद्युत्-अग्नि में आसक्त रहती हैं।' 'जैसे कोई स्मितवदना चन्द्रमुखी अपने प्रिय के लिए स्वयं को अलङ्कृत करती है वैसे ही ये बरसती जलधाराएँ अपने प्रिय विद्युत्-अग्नि के लिए स्वयं को अलङ्कृत करती हैं' (४/५८/९)। बरसते मेघों में जो विद्युत् चमक रही है। ऋषि उसी को नायिका के रूप में निरूपित कर रहा है।

ऋषि प्रतिभानु आत्रेय ने अन्तरिक्ष के गर्भ में निवास करते एवम् अपनी प्रज्ञा से उदकों का विस्तार करते विद्युत्-अग्नि की मनोहर स्तुति की है (५/४८/१)।

ऋषि स्वस्ति आत्रेय सविता की स्तुति करता हुआ कहता है कि जैसे माँ शिशु को स्तनपान कराती है वैसे ही सविता यज्ञ-गृह के वीरों को उदकपान कराता है। (५/५०/४)

ऋषि दीर्घतमा औचथ्य ने बरसते मेघों का बड़ा ही मनोहर चित्र अङ्कित किया है। ऋषि ने अन्तरिक्ष को काला घौंसला और बरसते मेघों को सुनहरे पंखों वाले उड़ते पक्षी कहा है जिन्होंने जल के वस्त्र पहन रखे हैं। 'ऋग्वेद' में बरसते मेघों का ऐसा मनोहर चित्र अनुपम है। ऋषि वर्णन कर रहा है- 'विशाल काला घौंसला है। सुनहरे पंखों वाले पक्षी जल के वस्त्र पहन कर अन्तरिक्ष में उड़ रहे हैं। जब ये पक्षी अपने ऋत के स्थान द्यौ से वापस लौटते हैं तब सारी पृथ्वी जल से तर-बतर हो जाती है' -

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद्धृतेनं पृथिवी व्युद्यते ॥ (१/१६४/४७)

मेघ बरस रहे हैं और जल में भीगा वायु सृष्टि को रोमाञ्चित कर रहा है। ऐसे वायु को ऋषि दीर्घतमा औचथ्य सरस्वान् नाम दे रहा है क्योंकि वह रसवान् है। ऋषि ऐसे वायु की स्तुति करता हुआ कहता है - 'जिसके गर्भ में जल है, जो गतिशील है, जो ओषधियों का प्रकाशक है, सभी को अपने वर्षा के जल का स्पर्श करवाकर प्रसन्न करने वाला है, ऐसे अन्तरिक्ष के सुनहरे पंखों वाले रसवान् पक्षी को मैं अपने यज्ञगृह में बार-बार बुलाता हूँ' -

दिव्यं सुपर्णं वायसं बृहन्तमपां गर्भं दर्शतमोषधीनाम्।
अभीपतो वृष्टिभिस्तर्पयन्तं सरस्वन्तमवसे जोहवीमि ॥ (१/१६४/५२)

नवग्व अङ्गिरस एवं दशग्व अङ्गिरस ऋषि भी इन्द्रवत् ऐसे पराक्रमी थे कि उन्होंने भी मेघों पर आक्रमण करके उन्हें बरसाया है। ऋषि शाक्त्य स्तुति कर रहा है - 'नवग्व अङ्गिरसों ने तथा दशग्व अङ्गिरसों ने असुर वृत्रों द्वारा छिपाए गोधन को मुक्त किया था।' (५/२९/१२)

ऋषि दीर्घतमा औचथ्य ने एक सहज ही दुही जानेवाली धेनु, जलों की निर्मात्री, गौरी वाक् सरस्वती की भव्यतम स्तुति की है जो 'ऋग्वेद' में अप्रतिम है। 'धनवानों में परम धनवती, धनों का पालन-रक्षण करने वाली, अपने मन से सृष्टिरूपी वत्स को चाहती, दूध के भार से जिसके थन फटे जा रहे हैं ऐसी, द्यु, अन्तरिक्ष और पृथ्वी के लिए अपना दूध दुहाने को आतुर राँभती हुई यह वर्षा-धेनु भागी आ रही है। महान् सौभाग्य के लिए इस महामहिमावती वर्षा-धेनु की अभिवृद्धि हो' -

हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसाभ्यागात्।
दुहामश्भ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय ॥ (१/१६४/२७)

ऋषि दीर्घतमा औचथ्य सरस्वती की पुनः स्तुति कर रहा है - 'जलों की निर्मात्री सरस्वती सूर्य में रहती है अतः यह एकपदी है। सूर्य एवं मेघ में रहती है अतः यह द्विपदी है। चारों दिशाओं एवं चारों उपदिशाओं में रहती है अतः यह अष्टापदी है। चारों दिशाओं, चारों उपदिशाओं एवम् आदित्य में रहती है अतः यह नवपदी है। यह परमव्योम द्यु में सहस्र धाराओं वाली है अतः यह सहस्राक्षरा है।'

गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी।
अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन् ॥ (१/१६४/४१)

ऋषि दीर्घतमा औचथ्य कहता है कि इस गौरी वाक् सरस्वती में समुद्र के समुद्र लहरा रहे हैं। अन्तरिक्ष की दिशाओं-उपदिशाओं में एक अणु मात्र जितनी जगह भी नहीं है कि जहाँ यह गौरी वाक् व्याप्त नहीं हो। यह अखण्ड-रूप में अन्तरिक्ष से धरती पर बरसने वाली है और इसीसे जगत् जीवित है ;-

तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः।
ततः क्षरत्यक्षरं तद्विश्वमुप जीवति ॥ (१/१६४/४२)

ऋषि दीर्घतमा औचथ्य ऐसी विश्वमाता सरस्वती का स्तनपान करना चाहता है। वह स्तुति कर रहा है, 'हे माँ सरस्वती ! तेरा स्तन अक्षय है, सुखदाता है, पुष्टिकर है, वरणीय है, रत्नों से अलङ्कृत है, धनदाता है, दानी है। ऐसे स्तन को तू मेरी ओर कर। मैं इसे पीना चाहता हूँ' -

यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि।
यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः सरस्वति तमिह धातवेकः ॥ (१/१६४/४९)

ऋग्वेद के ऋषि-ऋषिकाएँ अपने युग के लोकगायक थे। अपनी दूधभाषा में, अपनी मातृभाषा में उन्होंने ऋक्-गान करके जगत् के कल्याण के लिए देवों को प्रसन्न किया था। आज भी हमें गाँवों में ऐसी ही भाव-स्वर-लहरियों के दर्शन होते हैं। वर्षा न हो रही हो। खेती सूख रही हो तब रूठे राजा इन्द्र को मनाने के गीत आज भी गाँवों में गाए जाते हैं। ग्रामवधुएँ कैसे सुमधुर गीतों से इन्द्र को अपने यहाँ

बुलाकर, सुस्वादु पकवान खिलाकर उसे मना रही हैं। इसको लेकर एक गीत है मेवाड़ी में। गीत में ग्रामवधुएँ इन्द्र की विद्युत्-रानी से प्रार्थना कर रही हैं कि वह राजा इन्द्र को शीघ्र भेजे। ग्रामवधुएँ इस मनोविज्ञान को जानती हैं कि घर में राज तो स्त्री का ही होता है -

इन्दरजी ने मोकल ए मारी विजू राणी देश में।
आमने-सामने ओवराने सूरज सामे पोळ, इन्दरजी ने.....
गाय दुवाडुं सालरी, दूध पकवुं पाव..... इन्दरजी ने.... (सालरी = पहली बार ब्याई गाय, धेनु)
भैंस दुवाडुं बाकड़ी ने, घड़ळी पकवुं खीर....इन्दरजी ने.... (बाकड़ी = ब्याने के एक वर्ष बाद की गाढ़े दूध वाली भैंस)
लापसी रंधावुं सोळमी ने माये लीलरिया नाळेर....इन्दरजी ने... (सोळमी = धीमी आँच में, खूब घी डाल कर सेंकी गई)
धब से परसूं लापसी ने ढळ-हळ परसूं घी... इन्दरजी ने...
चोखा रंधावुं सोळमी ने, लाडु संधावुं वाजण्या ने ऊपर मिश्री खांड़... इन्दरजी ने...
ऊपर रखाऊँ बेठणा ने, अधर परोसूँ थाळ... इन्दरजी ने....
सोना-रूपारा लोट्या भराऊँ, ढोळु वीजणाए वीजू राणी... इन्दरजी ने...
साग-शीशमरा ढोळ्या, ढळाऊँ, फूलां साई सेज.... इन्दरजी ने....

यह गीत मुझे मेरी धर्मपत्नी श्रीमती गङ्गादेवी ने गाकर सुनाया है। जब ग्रामवधुएँ अपने समवेत कोकिल-कण्ठों से इस गीत को उठाती हैं तब उसके माधुर्य का क्या कहना - **'अखिलं मधुरम्'** ।

॥ शुभम् ॥

भ्रमरलाल जोशी
३१, प्रशान्तपार्क, पालडी
अहमदाबाद ३८० ००७